ISSN: 0976-2876 (Print)
ISSN: 2250-0138 (Online)

भारतीय ज्ञान परम्परा और कबीर साहित्य

रोशनलाल अहिरवार[1]

शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर, म.प्र., भारत

शोध सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा अनादि और समृद्ध है, जिसका मूल वेदों, उपनिषदों, दर्शनशास्त्रों (योग, सांख्य, वेदांत), और आयुर्वेद जैसे शास्त्रों में निहित है। यह परंपरा ज्ञान, कर्म और भक्ति का एक संतुलित समन्वय है, जो केवल आध्यात्मिकता ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन के नैतिक मूल्यों को भी प्रतिपादित करती है। मध्यकाल में जब सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक क्रांतियां अपने चरम पर थीं, तब भारतीय समाज अंधविश्वासों और आडंबरों के बोझ तले दबा हुआ था। इस संधि काल में कबीरदास ने भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल तत्वों को पुनर्जीवित किया और उसे एक नई दिशा दी। साहित्य में कबीरदास का स्थान शिरोमणि है जिन्होंने सामाजिक समरसता के लिए काव्य उपदेशों, विचारों, वाणी के माध्यम से समाज सुधार में अग्रणी भूमिका निभाई है। जिनका नाम स्वर्ण अक्षरो में युगो–युगान्तर तक समाज सुधार में समाज को नई राह दिखाने पीढ़ी दर पीढी चलता रहेगा तथा इस अवस्था में वो हमारे साथ पथ प्रदर्शक होते रहेंगे कबीरदास का संत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल भारत में अनेक समस्याएं धार्मिक रूढ़िया, अंधविश्वास, ऊँच–नीच, वर्ण व्यवस्था, हिंदू मुस्लिम झगड़े, अपनी चरम सीमा पर थे संत कबीरदास के समय भारत कीराजनीतिक, सामाजिक, अर्थिक एंव धार्मिक शोचनीय थी। कबीर सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। इस शोध पत्र मे कबीर की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डाला गया है।

शब्द कुंजीः भारतीय ज्ञान परम्परा और कबीर

प्रस्तावना

भारत की प्राचीन, स्वदेशी और व्यापक ज्ञान प्रणाली है। यह केवल किताबी ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला, विज्ञान, दर्शन और आध्यात्मिकता का एक एकीकृत रूप है। कबीर केवल एक कवि नहीं थे, वे एक समाज सुधारक, क्रांतिकारी दार्शनिक और मानववादी चिंतक थे। उन्होंने परंपरागत ज्ञान की रूढ़ियों को तोड़कर उसे जनसाधारण की भाषा में सुलभ बनाया। कबीर भारतीय परंपरा के निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासक थे, जो उपनिषदों के अद्वैत वेदांत से प्रभावित था।

निर्गुण ब्रह्म और कबीर ने राम को दशरथ–पुत्र न मानकर सर्वव्यापी, निराकार माना। वे कहते हैं ज्ञान मार्गी शाखा कबीर निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा के सर्वोच्च कवि हैं, जिन्होंने आत्म–ज्ञान को ही सबसे बड़ा ज्ञान बताया है। हठयोग और तंत्र का प्रभावरू कबीर के काव्य में नाथपंथियों और सिद्धों का प्रभाव भी मिलता है, विशेष रूप से हठयोग, कुंडली जागृति और काया (शरीर) की शुद्धि का उल्लेख, जो भारतीय ज्ञान परंपरा का एक योगिक हिस्सा है।

कबीर के साहित्य में भारतीय ज्ञान के लोक–रूप कबीर का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने शास्त्रीय ज्ञान को श्लोक ज्ञान में बदल दिया। अनुभूतिजन्य ज्ञान कबीर किताबी ज्ञान की अपेक्षा स्वयं के अनुभव को प्रधानता देते थे। भारतीय परंपरा में सत्य के साक्षात्कार का प्रत्यक्ष अनुभव–आधारित ज्ञान है। सहज साधना कबीर ने कठिन तपस्या के स्थान पर सहज साधना का मार्ग बताया, जहाँ ईश्वर पाने के लिए घर–बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि मन की शुद्धि ही आवश्यक है।

हिंदी साहित्य के काल विभाजन को रामचंद्र शुक्ल ने खण्डन में बाटते हुए आदिकाल को संवंत 1050 से 1375 तक इसी प्रकार मध्यकाल का समय संवंत 1375 से 1700 तक माना मध्यकाल को भक्ति काल के नाम से जाना जाता है इसकी दो धाराओं में निर्गुण धारा के अंतर्गत निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा में दादू दयाल सुंदर दास तथा कबीर दास के स्थान शिरोमणि है।

भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। भक्ति में भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। हिंदी में

[1]Corresponding author

निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं।

निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए – ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं।

निर्गुणोपासक कबीर ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र प्रहार किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। ''युगावतारी शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसीलि, वे युग–प्रवर्तन कर सके थे।''1

कबीरदास गुरु को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति–पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढियों का वे विरोध करते थे। कबीर अनुभव की दृष्टि से समृध्द,सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को श्सधुक्कड़ीश् कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है।

आचार्य द्विवेदी ने बहुत बल देकर कहा है– कबीरदास जी का भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप था। इसी केन्द्र के इर्द गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे है। वे कभी सुधार करने के फेर मे नही पड़े। शायद वे अनुभव कर चुके थे कि जो स्वयं सुधारना नहीं चाहता उसे जबरदस्ती सुधारने का प्रयास व्यर्थ का प्रयास है।

कबीर ने धार्मिक पांखड़ो, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों आदि को दूर करने की अपूर्व शक्ति है। उसमें समाज के अन्तर्गत, क्रांति उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता है और उसमें चित्तवृतियों को परिमार्जित करके हृद्वय को उदार बनाने की अनुपम साम्थर्य है। इस प्रकार कबीर का साहित्य जीवन को उन्नत बनाने वाला है कारण हिन्दी की संत काव्यधारा में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

सामाजिक जीवन में व्याप्त जातिवाद ,सांप्रदायिकता ,अंधविश्वास पाखंड एवं आडंबर और मूर्ति पूजा आदि को मिटाने के लिए कबीर की वाणी थोड़ी कर्कश हो उठी थी। उन्होंने पाखंडियों और मौलवियों को खूब आढे हाथ लिया था आज हम जिस सुधार और हिंदू मुस्लिम एकता की बात करते हैं वह तो मध्य युग में ही शुरू हो गई थी इन प्रयासों की शुरुआत तो क्रांतिकारी युग दृष्टा एवं समाज सुधार या समाज चेतना कबीर कर चुके थे

कबीर की सामाजिक चेतना

सामाजिक जीवन में व्याप्त जातिवाद ,सांप्रदायिकता ,अंधविश्वास पाखंड एवं आडंबर और मूर्ति पूजा आदि को मिटाने के लिए कबीर की वाणी थोड़ी कर्कश हो उठी थी। उन्होंने पाखंडियों और मौलवियों को खूब आढे हाथ लिया था आज हम जिस सुधार और हिंदू मुस्लिम एकता की बात करते हैं वह तो मध्य युग में ही शुरू हो गई थी इन प्रयासों की शुरुआत तो क्रांतिकारी युग दृष्टा एवं समाज सुधार या समाज चेतना कबीर कर चुके थे

मध्यकाल में कबीरदास के माध्यम से सामाजिक समरसता का स्वर मुखरित हुआ था। वे सामाजिक समरसता का आधार व्यक्ति के आचरण मे खोजते है। अच्छे आचरण के निर्माण हेतु जिन मानवीय गुणो की आवश्यकता है।उनक चर्चा कबीर की विकास के माध्यम से सामाजिक समस्या का सुर मुक्त हुआ था वे सामाजिक समरसता समानता का आधार व्यक्तियों के आरक्षण में कुछ खोजते हैं अच्छे आश्रम वाले व्यक्ति सामाजिक समस्या का आधार बन सकता है और अच्छे आचरण के निर्माण हेतु जन मानवीय गुना की आवश्यकता है उनकी चर्चा कबीर की प्रस्तुत सखियां है संतोषवृत्ति करुणा का विस्तार एवं सभी आत्माओ मे परमात्मा के निवास का अनुभव ही सामाजिक समरसता के मूल्यों को सुरक्षित रखने वाले गुण है कबीर की मान्यता थी कि जिनका कर्म ऊंचा होता है वही बड़ा कहा जा सकता है जाति से कोई व्यक्ति ऊंचा नीचा नहीं होता है वास्तुतः गुण ग्राहक समाज ही उदात्त समाज बनाता है।

कवित्त के माध्यम से ही कबीर ने सामाजिक दर्शन या चेतना के स्वरूप का व्याख्या या बखान किया है।

''मैं कहता हूं आखिन देखी तू कहता कागज की लेखी''।

अर्थात जो कबीर ने समाज में महसूस किया उसे वाणी से व्यक्त किया है।

गुरु और ईश्वर का महत्व

संत संप्रदाय में गुरु को ब्राह्म के समान माना गया है कबीर दास जी गुरु को सर्वश्रेष्ठ स्थान अपनी वाणी के माध्यम से प्रदान करते हैं तथा कहते हैं

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाए।

बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय।। 2

कबीर ने गुरू को बहुत महत्व दिया है। उनकी अहम् प्रेरणा का मूल स्त्रोत उनके गुरू ही थे जिनकी कृपा से उन्होंने सभी संकीर्ण बन्धनों को तोड़ा, वे स्वतन्त्र–चिन्तक, उन्होंने बहुत–सी ज्ञानपूर्ण सच्चाईयों को सामान्य जन तक पहुँचाया, आत्म–ज्ञान प्राप्त करना, मूल सत्य से परिचित होना, इस सब कार्यों की प्रेरणा देने वाले उनके गुरू ही थे। वही इस मार्ग को बताने वाले तथा भक्ति मे ,वाणी मे संजोकर रखते है तथा गुरू को सर्वश्रेष्ठ सर्वोच्च स्थान देते हुए निगुर्ण भक्ति परम्परा को प्रसस्थ किया है। उपर्युक्त पक्तियो मे कबीर का दर्शन है कि गुरुवर और गोविंद मे सबसे पहले चरण बदना करू यहा दोनो वंदनीय होते हुए भी कबीर कहते हे मै शरणागत हू गुरू का जिसने मुझे ज्ञान तत्व से अभीभूत किया की मे ईश्वर को जान सका हू। ऐसे महान उच्च्तर विचारे से समाज को जाग्रत करने का कार्य वाणी के माध्यम से कबीर मे दिखाई देती है।

ईश्वर से प्रेम

कबीर दास जी कहते हैं जिसे ईश्वर से प्रेम किया भक्ति की है अपना मन लगाया है उसकी साधना खाली नहीं जाती उसका फल जरूर मिलता है राम के प्रेम का रसपान करने का नशा नहीं उतरता है यही राम रस पीने वाले की पहचान भी है ।प्रेम रस से मस्त होकर भक्त मतवाले की तरह–तरह घूमने लगता है उसे अपने शरीर की शुधि भी नहीं रहती भक्ति भाव में डूबा हुआ व्यक्ति संसार व्यवहार की परवाह नहीं करता और उसकी दृष्टि में देह धर्म नगण्य हो जाता है कबीर का मत है–

हरि रस पीया जानिए,जे कुहू न जाय खुमार।

मनमुताबिक घूमा फिर,नाही तन की सार।।3

अध्यात्म मे रहस्यवाद पर विचार

कबीर दास जी कहते हैं की आत्मा और परमात्मा का रहस्य जल और घड़े के समान है घड़े मे जल या जल मे घड़ा विशेष अन्तर को नही दर्शाता है। जब घड़ा फूटता है तो जल जल मे ही समाज जाता है उसी प्रकार जिस प्रकार आत्मा परमात्मा मे विलीन हो जाती है। कबीर कहते हे–

जल मे कुंभ ,कुम्भ में जल है।

बाहर भीतर पानी ।।

टूट्यो कुंभ जल जाहिर समाना।

यह तथ्य कहे ज्ञानी।। 4

मूर्ति पूजा का विरोध

कबीर ने समाज में व्याप्त मूर्ति पूजा का डटकर विरोध किया वे सामान्य जनता को समझाते हुए कहते हैं कि मूर्ति पूजा से भगवान नहीं मिलते कबीर दुनिया की मूर्ति पूजा के पागलपन पर प्रहार करते हैं और कहते हैं कि इन मूर्तियों में अगर देवता होता तो वह स्वयं को मूर्ति भंजकों से बचा लेता है किंतु ऐसा ना हो सका इसलिए मूर्तियों को पूछना छोड़ दो वह कर्म की पूजा करो अच्छा हो कि तुम वह चक्की को पूजा करो जिसका दिया आटा तुम्हारा पेट भरता है ।

पाहन पूजैं हरि मिलै तो मैं पूजू पहार।

घर की चकी कोई न पूजै पीस खाए संसार।। 5

निष्कर्ष

कबीर ने वैषम्य को दूर कर सकता स्थापित करने का प्रयास किया। परोपकार, सेवा, क्षमा, करूणा, दान, अहिंसा, सत्संग, आदि का प्रचार करके वे शुद्ध आचरण एवं सात्विकता पर बल देते है। कबीर हिन्दू–मुस्लिम मे भाई–चारे की भावना उत्पन्न हो। वे ढोंग तथा अन्धविश्वास समाप्त करना चाहते

थे। कबीर नैतिक मूल्यों के पक्षधर ऐसे सन्त कवि थे जो जनता के सच्चे पथ प्रदर्शक कहे जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

हजारी प्रसाद द्विवेदीः कबीर; राजकमल प्रकाशन; नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1976, पृष्ठ 176–77

डॉ. नगेंद्रः हिन्दी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स, तैतीसवां संस्करण 2007 पृष्ट 123

डॉ. नगेंद्रः हिन्दी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स, तैतीसवां संस्करण, 2007 पृष्ट 123

श्यामसुंदर दासः कबीर ग्रंथावली; लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज नवम्बर संस्करण 2022, पृष्ट 27

डॉ. अशोक तिवारीः हिन्दी; साहित्य भवन आगरा, 2010 पृष्ट 13